भक्ति–योग

अर्जुन बोले – भक्त निरन्तर लगे हुऐ उपासना करते ।
योगवेत्ता कौन है उत्तम? जो अक्षर अव्यक्त को भजते।। 1 ।।

मन को नित्य लगाके मुझमें, भगवन बोले– पूज्य भाव से ।
युक्त हुऐ उपासना करते, उत्तम वे हैं मम विचार से ।। 2 ।।

इन्द्रिय संघ को वश में करके, चिन्तन में न आने वाले ।
सर्वव्याप्त, ध्रुव, निर्विकार को, देखन में न आने वाले ।।
नित्य, अचल, अव्यक्त को भजते, प्राणीहित में तत्परता से ।
प्रीत रखें, सर्वतः सम बुद्धि वाले नर मुझको ही पाते ।। 3–4 ।।

अधिक कलेश अव्यक्त में हो आसक्त चित्त वाले साधक को ।
देहाभिमानी दुःख से पायें अव्यक्त विषयक गति को ।। 5 ।।

किन्तु जो नर समस्त कर्मों को मुझमें ही अर्पण करके ।
प्रवृत हुये, अनन्य योग से नित्य निरन्तर हैं भजते ।।
मुझमें लगे हुये चित्त वाले, अर्जुन! मैं उन भक्तों का ।
मृत्यु रूप संसार–सिंधु से शीघ्र उद्धारक बन जाता ।। 6–7 ।।

मुझमें मन को स्थापित कर, मुझमें ही तू बुद्वि लगाये ।
इसके बाद नहीं कुछ संशय – मुझमें ही तू रह जाये ।। 8 ।।

स्थिर रखने में समर्थ नहीं मुझमें मन को अचल भाव से ।
मुझको पाने की इच्छा कर, धनन्जय! अभ्यास योग से ।। 9 ।।

इसमें भी असमर्थ जो पाये, मेरे कर्म परायण हो ।
मेरे लिये कर्मों को करता भी तू पाये सिद्वि को ।। 10 ।।

करने में समर्थ नहीं इसको, मेरे योग के आश्रित हो ।
मन–इन्द्रिय को वश में कर, त्याग सभी कर्म फल को ।। 11 ।।

शास्त्र ज्ञान उत्तम अभ्यास से, ध्यान है उत्तम इससे भी ।
कर्मफल चाह त्याग सर्वोत्तम, शान्ति मिले इससे जल्दी ।। 12 ।।

द्वेष रहित सब जीवों में, मित्र भाव का, दयालु , निर्मम ।
अहंकार बिन, क्षमावान, सुख और दुःख को पाने में सम ।
तुष्ट निरन्तर, योगी, वश में देह व दृढ निश्चय वाला ।
मुझको मेरा भक्त है प्यारा, अर्पित बुद्धि–मन वाला ।। 13–14 ।।

जिससे कोई क्षुब्ध न हो, स्वयं न हो उद्विग्न किसी से ।
प्रिय है भक्त मुझे जो मुक्त, हर्ष, ईर्ष्या, भय, हलचल से ।। 15 ।।

पावन, चतुर, उदासीन है आकांक्षा और व्यथा रहित जो ।
मेरा भक्त मुझे है प्रिय, सर्वारम्भ का परित्यागी जो ।। 16 ।।

हर्षित ना हो द्वेष न करता, आकांक्षा न शोक करे जो ।
भक्तिमान नर मुझको प्रिय है शुभ–अशुभ से बहुत परे जो ।। 17 ।।

शत्रु–मित्र, सर्दी–गर्मी में, मान–अपमान के फन्दों में ।
आसक्ति से रहित है जो, सम है सुख– दुःख द्वन्दों में ।।
निन्दा–स्तुति समान समझे, मौनी, देह निबाह में तृप्त ।
ममता–संग रहित रहने में, स्थिर मति मुझे प्रिय भक्त ।। 18–19 ।।

भक्त धर्ममय अमृत का जो, प्रेम भाव से करता पान ।
श्रृद्धामय परायण होकर, उसको मेरा अतिप्रिय जान ।। 20 ।।

————ओ3म् तत्सत् ————